श्रीअम्बालाल प्रेमचन्द शाह

जैनशास्त्र और मंत्रविद्या

प्रत्येक व्यक्ति को ऐश्वर्य प्राप्त करने का आकर्षण बना रहता है. उसे प्राप्त करने के लिए वह विविध बौद्धिक और शारीरिक परिश्रम करता रहता है. विद्या, मन्त्र और योग की सिद्धियों के चमत्कार ऐसे ही प्रयत्न हैं.

विद्या और मन्त्र में थोड़ा फर्क है. 'विद्या' कुछ तांत्रिक प्रयोग और होम करने से सिद्ध होती है और उसकी अधिष्ठात्री स्त्री देवता होती है, जबकि 'मंत्र' सिर्फ पाठ करने से सिद्ध होता है और उसका अधिष्ठाता पुरुष देवता रहता है. अथवा गुप्त संभाषण को 'मंत्र' कहते हैं. 'योग' अर्थात् किसी जादूई प्रयोग द्वारा आकर्षण, मारण, उच्चाटन, रोगशांति वगैरह या पैरों में लेप लगाकर ऊँचे उड़ने की, पानी की सतह पर चलने की चामत्कारिक शक्ति आदि की प्राप्ति.

जैनों में मंत्रविद्या का प्रचलन कब से हुआ, यह कहना मुश्किल है. जैनों के आगम-साहित्य में चामत्कारिक प्रयोगों के विषय में अनेक निर्देश मिलते हैं. ऐसा माना जाता है कि चौदह पूर्वों में जो दसवाँ 'विद्यानुवाद' पूर्व था, उसमें अनेक मंत्र प्रयोगों का वर्णन था, परन्तु वह पूर्व आज उपलब्ध नहीं है. उसमें से कितनेक मंत्र और उनके प्रयोग परम्परा से चले आये, वे पिछले ग्रंथों में संग्रहीत देखने में आते हैं. 'मणि-मन्त्रौषधानामचिन्त्यः प्रभावः' यह उक्ति भी जैनाचार्यों ने प्रामाणिक ठहराई है.

आज जो आगमग्रंथ मिलते हैं उनमें से 'बृहत्कल्पसूत्र' में कोऊअ, भूइ, पासिण, पसिणापसिण, निमित्त जैसे जादूई विद्या के उल्लेख मिलते हैं.

'भगवतीसूत्र' से जाना जाता है कि, गोशाल महानिमित्त के आठ अंगों— १ भौम, १ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ आंतरिक्ष, ५ अंग, ६ स्वर, ७ लक्षण और ८ व्यञ्जन में पारंगत था. वह लोगों के लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण वगैरह की भविष्यवाणी कर सकता था.

'स्थानांगसूत्र' और 'समवायांगसूत्र' में इस महानिमित्तशास्त्र को पापश्रुत के अन्तर्गत बताया है, तो भी अनेक विद्याओं के निर्देश आगम के भाष्य, चूर्णि और टीका आदि साहित्य में मिलते हैं. लब्धि और लब्धिधारियों के उल्लेख भी पर्याप्त प्रमाण में प्राप्त होते हैं. जिसका नाम जानने में नहीं आया ऐसे एक जैनाचार्य 'अंगविज्जा' नामक विशालकाय (६००० श्लोकप्रमाण) ग्रन्थ की रचना करें, तब इस विद्या और शास्त्र का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है. एक पट्टावली के उल्लेख से ज्ञात होता है कि राजगच्छीय अभयसिंहसूरि नामक जैनाचार्य दुःसाध्य 'अंगविद्या' शास्त्र को अर्थ सहित जानते थे.

लब्धिधारी या मांत्रिकों में से कितनेक जैनाचार्यों के नाम सुप्रसिद्ध हैं. ऐसी सिद्धियों के कारण उन्होंने प्राभाविक आचार्यों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की है. याद रहे कि, जैनों में जो आठ प्रकार के प्राभाविक कहे गये हैं उनमें निमित्त-वादी भी एक है. आर्य सुरक्षित, सुप्रतिबुद्ध, सिद्ध रोहण, रेवतीमित्र, श्रीगुप्त, कालिकाचार्य, आर्य खपुटाचार्य, पादलिप्त-सूरि, सिद्धसेन दिवाकर वगैरह प्राचीन आचार्यों के नाम मंत्रवादी के रूप में मुख्य रूप से गिनाये जा सकते हैं.

प्राचीन आचार्यों में अज्ञातकर्तृक 'अंगविज्जा' और 'जयपाहुड' इन निमित्त और चूडामणिनिमित्त शास्त्र के ग्रंथों के सिवाय किसी ने मंत्रशास्त्र की रचना की हो, ऐसा जानने में नहीं आता. नवीं और दसवीं शताब्दी के बाद हुए कितनेक श्वेताम्बर आचार्यों में बप्पभट्टिसूरि, हेमचन्द्रसूरि, भद्रगुप्तसूरि, जिनदत्तसूरि, सागरचन्द्रसूरि, जिनप्रभसूरि, सिंहतिलकसूरि वगैरह आचार्यों के रचे हुए कितनेक मंत्रमय स्तोत्र, कल्प और छोटी रचनायें मिलती हैं. जब कि दिगम्बर जैनाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लिषेणसूरि ने 'विद्यानुवाद' और 'भैरव पद्मावतीकल्प' जैसे बड़े ग्रंथ और आयशास्त्र का 'आयसद्भाव' और 'जगत्-सुन्दरी प्रयोगमाला' जैसे तांत्रिक ग्रंथों की रचना की है यह उल्लेखनीय है. कहा जाता है कि उनमें निर्दिष्ट मंत्र और विद्या 'विद्याप्रवाद' पूर्व में विद्यमान थीं.

जैनाचार्यों के रचे हुए कथा आदि अनेक ग्रन्थों में मन्त्रवादियों के प्रचुर वर्णन प्राप्त होते हैं. 'कुवलयमाला' में जो एक सिद्ध पुरुष का उल्लेख मिलता है उसे अंजन, मंत्र, तंत्र, यक्षिणी, योगिनी आदि देवियाँ सिद्ध थीं. 'आख्यानकमणिकोश' में भैरवानन्द का वर्णन, 'पार्श्वनाथचरित' में भैरव का वर्णन, 'महावीरचरित' में घोरशिव का वर्णन, 'कथारत्नकोश' में जोगानन्द और बल वगैरह के वर्णन मिलते हैं, वे वैसी ही मंत्रविद्या के साधक पुरुष थे.

'बृहत्कल्पसूत्र' विधान करता है कि—

"विज्जा-मंत-निमित्ते हेउसत्थट्ठदंसणट्ठाए ।।"

अर्थात्—दर्शनप्रभावना की दृष्टि से विद्या, मन्त्र, निमित्त और हेतुशास्त्र के अध्ययन के लिये कोई भी साधु दूसरे आचार्य या उपाध्याय को गुरु बना सकता है.

'निशीथसूत्र-चूर्णि' में तो आज्ञा दी है कि—

विज्जगं उभयं सेवे त्ति—उभयं नाम पासत्था गिहत्था, ते विज्जा-मंत-जोगादिणिमित्तं सेवे ।" (१-७०)

अर्थात्—विद्या-मंत्र और योग के अध्ययनार्थ पासत्था साधु एवं गृहस्थों की भी सेवा करनी चाहिए.

स्पष्ट है कि, जैनशासन की रक्षा के लिये मंत्र, तंत्र, निमित्त जानना जरूरी था परन्तु उसका दुरुपयोग करने का निषेध था.

आ० भद्रबाहुस्वामी को आर्य स्थूलिभद्र को पूर्वों का ज्ञान देते हुए उनके द्वारा किये गये विद्या के दुरुपयोग के कारण दंडस्वरूप दूसरी विद्याएँ नहीं देने का निर्णय लेना पड़ा था. यह तथ्य सूचन करता है कि, विद्या को निरर्थक प्रकाश में रखने में खूब सावधानी रखी जाती थी और शिष्यों की योग्यता देख कर ये विद्याएँ केवल दर्शनप्रभावना की दृष्टि से ही दी जाती थीं.

जैनधर्म ने मन्त्रयान अपनाया तो भी उसने अपनी सैद्धान्तिक दृष्टि रखी ही है, यह भूलना नहीं चाहिए. यह पतनशील परिणामों से बिलकुल अछूता रह सका है यह उसकी विशेषता है. जैनपरम्परा की दृष्टि से ऐसी कितनीक विशेषताएँ इस प्रकार मालूम पड़ती हैं :

१. मिथ्यात्वी देवों से अधिष्ठित मन्त्रों की साधना नहीं करना.
२. मन्त्र का उपयोग केवल दर्शनप्रभावना के लिए ही करना. उसके सिवाय ऐहिक लाभों के लिये नहीं करना.
३. तांत्रिकपद्धति को स्वीकार नहीं करना.
४. शास्त्रों में जो ध्यानयोग अपनाया गया है उस पद्धति से पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, इन भावनाओं की मर्यादा में रह कर मन्त्रयोग की साधना करना.

दूसरी दृष्टि से देखें तो मन्त्रविद्या एक गहन विद्या है. उसकी साधना के लिये अनेक बातों पर ध्यान देना पड़ता है. सर्वप्रथम मन्त्रसाधक की योग्यता कैसी होनी चाहिये, उसके विषय में मन्त्रशास्त्र खूब कठोर नियम बताता है.

साधक में पूरा शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य होना चाहिये. मन में प्रविष्ट खराब विचारों को रोकने की और पवित्र भावना में रमण करने की शक्ति होनी चाहिये. प्राणायाम के रोचक, पूरक और कुंभक योग द्वारा मन को उन-उन स्थलों में रोकने का अभ्यास होना जरूरी है. मन्त्रसाधना करते हुये अनेक प्रकार के उपद्रव उपस्थित हों तो उसके सामने जूझने का सामर्थ्य होना चाहिये. ऐसी योग्यता प्राप्त न की हो तो वह पागल-सा बन जाता है या मरण के शरण होता है.

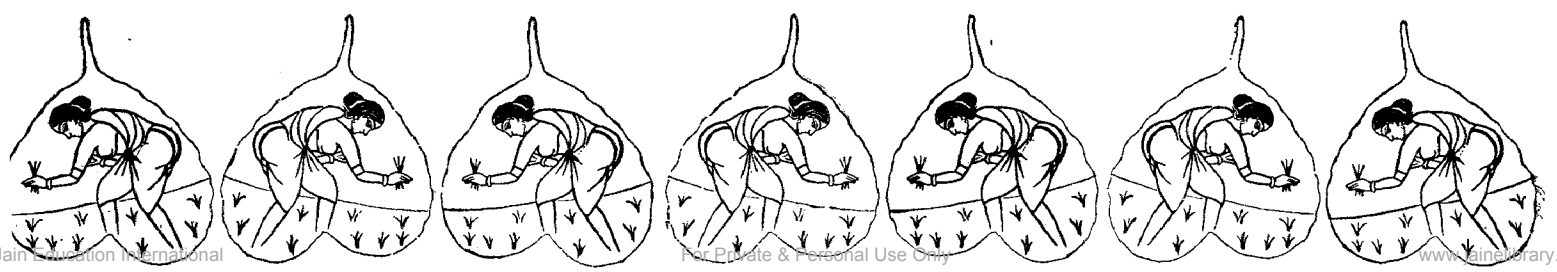

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके सिवाय इंद्रियों पर काबू प्राप्त करने की शक्ति—ब्रह्मचर्य, मिताहार, मौन, श्रद्धा, दया, दाक्षिण्य आदि गुणों की आवश्यकता पर भार दिया गया है.

इसके पीछे मंत्रसाधक को साधनासमय में नीचे बताई हुई प्रक्रिया में से पार होना चाहिये.

१ योग, २ उपदेश, ३ देवता, ४ सकलीकरण, ५ उपचार, ६ जप, ७ होम—उसमें जप करनेवाले को १ दिशा, २ काल, ३ मुद्रा, ४ आसन, ५ पल्लव, ६ मंडल, ७ शान्ति आदि कर्मों के प्रकार जानकर जप और होम करना चाहिए.

१. योग—मंत्र के आदि अक्षर के साथ नक्षत्र, तारा, और राशि की अनुकूलता ज्योतिःशास्त्र के साथ मिलान करे. यदि किसी प्रकार का विरोध न हो तो ही मंत्र सिद्ध होता है.

इसी प्रकार साध्य आदि भेद को भी चकासने-परखने की आवश्यकता है. साध्य और साधक का यदि मेल न बने तो मंत्र आदि का आराधन करने, कराने में अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं और अंत में परिणाम अनिष्टकारक बनता है.

साध्य आदि भेद चकासने की अनेक रीतियाँ देखने में आती हैं. उनमें से १ भद्रगुप्ताचार्य ने अनुभव सिद्ध मन्त्रद्वात्रिंशिका में जो रीति बतायी है वह इस प्रकार है—

'अ इ उ ए ओ' इन पांच स्वरों से आरम्भ कर 'ड ढ ण' वर्णों को छोड़कर पाँच सरीखी पंक्तियों में सर्व मातृकाक्षर लिखें. पीछे साध्य नाम से गिनते हुए साधक का नाम जिस स्थान में आवे उस स्थान का फल देने वाला मंत्र है ऐसा समझना. ये पाँच नाम इस प्रकार हैं—

१ साध्य, २ सिद्धि, ३ सुसिद्ध, ४ शत्रुरूप और ५ मृत्युदायी. इन पाँच प्रकारों में से आद्य तीन भेद क्रम से श्रेष्ठ, मध्य और स्वल्प फल देने वाले होने से शिष्य की योग्यता के अनुसार दे सकते हैं, परन्तु अंतिम दो भेद शत्रुरूप और मृत्युदायी होने से किसी को भी देने योग्य नहीं हैं.

उपर्युक्त प्रकारों का 'मातृकाचक्र' इस प्रकार है—

मातृका चक्र

१	२	३	४	५
अ	इ	उ	ए	ओ
आ	ई	ऊ	ऐ	औ
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह

२ उपदेश—मंत्र पढ़ लेने के बाद मात्र जाप करना नहीं चाहिए परन्तु मंत्र और विधि गुरु के पास से जानकर ही, गुरु के मुख से मंत्र पाठ लेकर साधना करनी चाहिए.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ देवता—चौबीस तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर का जाप किया जाय तो उनके सेवक यक्ष और यक्षिणी सेवक बन कर साधक की मनोवांछित सिद्धि में सहायक होते हैं.

२४ यक्ष—

"जक्खा गोमुह महजक्ख तिमुह जक्खेस तुंबरु कुसुमो ।
मायंगो विजयाजिय बंभो मणुओ सुरकुमारो अ ।
छम्मुह पयाल किन्नर गरुलो गंधव्व तह य जक्खिंदो ।
कुबेर वरुणो भिउडी गोमेहो पासमायंगा ।।"

अर्थात्—१ गोमुख, २ महायक्ष, ३ त्रिमुख, ४ यक्षेश, ५ तुंबरु, ६ कुसुम, ७ मातंग, ८ विजय, ९ अजित, १० ब्रह्म, ११ मनुज, १२ सुरकुमार, १३ षण्मुख, १४ पाताल, १५ किन्नर, १६ गरुल, १७ गन्धर्व, १८ यक्षेन्द्र, १९ कुबेर, २० वरुण, २१ भृकुटि, २२ गोमेध, २३ पार्श्व, और २४ मातंग.

२४ यक्षिणी—

"देवीओ चक्केसरि अजियादुरियारि कालि महकाली ।
अच्चुआ संता जाला सुतारयासोअ सिरिवच्छा ।।
चण्डा विजयंकुसी पन्नत्ती निव्वाणी अच्छुआ धरणी ।
वइरुट्टच्छुत्त गंधारी अंब पउमावई सिद्धा ।।"

अर्थात्–१ चक्रेश्वरी, २ अजिता, ३ दुरितारि, ४ काली, ५ महाकाली, ६ अच्युता, ७ शांता, ८ ज्वाला, ९ सुतारका, १० अशोका, ११ श्रीवत्सा, १२ चण्डा, १३ विजया, १४ अंकुशा, १५ प्रज्ञप्ति, १६ निर्वाणी, १७ अच्छुप्ता, १८ धरणी, वैराट्या, २० अच्छुप्ता २१ गन्धारी, २२ अंबा, २३ पद्मावती, और २४ सिद्धा.

१६ विद्यादेवी—

"रक्खंतु मम रोहिणि-पन्नत्ती वज्जसिंखला य सया ।
वज्जंकुसि चक्केसरि नरदत्ता कालि महकाली ।।
"गोरी तह गन्धारी महजाला माणवी अ वइरुट्टा ।
अच्छुत्ता माणसिआ महमाणसिआ उ देवीओ ।।"

१ रोहिणी, २ प्रज्ञप्ति, ३ वज्रशृंखला, ४ वज्रांकुशी, ५ चक्रेश्वरी, ६ नरदत्ता, ७ काली, ८ महाकाली, ९ गौरी, १० गांधारी, ११ महाज्वाला, १२ मानवी, १३ वैरोट्या, १४ अच्छुप्ता, १५ मानसी और १६ महामानसी.

इन रोहिणी वगैरह विद्याओं के प्रभाव से विद्याधर ऐसे मनुष्य देव समान सुख प्राप्त करते हैं. विद्यादेवियों का ध्यान खूब भक्ति से करना चाहिये.

४ सकलीकरण—

ध्यान करने के पहिले सकलीकरण अर्थात् आत्मरक्षा करनी चाहिए. सकलीकरण से विद्या की साधना में निर्विघ्न कार्य-सिद्धि होती है.

प्रथम दिग्बंध करना चाहिए. फिर जल से अमृत-मंत्र बोलकर शरीर पर छिटकना चाहिए. फिर मंत्रस्नान करके शुद्ध धुले वस्त्र पहनकर एकान्त और निरुपद्रवी स्थान में (ब्रह्मचर्य आदि श्रावक के पांच व्रतों का पालन करते हुए) भूमि शुद्ध करके आसन पूर्वक बैठना चाहिए.

१. ओँ णमो अरहंताणं ह्राँ शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा ।
२. ओँ णमो सिद्धाणं ह्रीं वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा ।
३. ओँ णमो आयरियाणं ह्रूँ हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. ओं णमो उवज्झायाणं ह्रौं नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा ।
५. ओं णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा ।

इस प्रकार अंगन्यास करके पंचांग रक्षा करनी चाहिये अथवा 'क्षिप ओं स्वाहा' इन बीजाक्षरों से मस्तक, मुख, हृदय, नाभि और पाँव अंगों में सुलटे-उलटे क्रम से न्यास करने से पंचांग रक्षा होती है.

५. उपचार—सकली क्रिया करने के बाद पंचोपचार पूजा के यन्त्र के अधिष्ठाता देव की पूजा नीचे बताई हुई विधि से करनी चाहिए. वे पांच उपचार ये हैं—१ आह्वान, २ स्थापन, ३ संनिधीकरण, ४ पूजन, ५ विसर्जन मुद्रापूर्वक करना चाहिए. उनके मंत्र इस प्रकार हैं—

१. ओं ह्रीं नमोऽस्तु[1] .....एहि एहि संवौषट् । (आह्वान)
२. ओं ह्रीं नमोऽस्तु .....तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । (स्थापन)
३. ओं ह्रीं नमोऽस्तु ..... मम संनिहिता भव भव वषट् । (संनिधीकरण)
४. ओं ह्रीं नमोऽस्तु ..... गन्धादीन् गृहाण गृहाण नमः । (अष्ट द्रव्यों से पूजन)
५. ओं ह्रीं नमोऽस्तु .....स्वस्थानं गच्छ जः जः (विसर्जन)

आह्वान पूरक प्राणायाम से; स्थापन, संनिधीकरण और पूजन ये तीन कुंभक प्राणायाम से और विसर्जन रेचक प्राणायाम से करना चाहिये.

अंत में इस प्रकार बोलना चाहिये—

आह्वानं नैव जानामि न च जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि प्रसीद परमेश्वर ! ।।
"आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं च यत् कृतम् ।
क्षमस्व देव ! तत् सर्वं प्रसीद परमेश्वर ! ।।"

६. जप—सामान्य रीति से मंत्र के जाप की संख्या १०८ अथवा १००८ मानी गई है. जप के भी तीन प्रकार हैं—(१) मानस जप, (२) उपांशुजप और (३) वाचिकजप. सब मन्त्र मानस जप—मन में जिह्वा से धीरे से शुद्ध बोलना चाहिये.

जाप से मंत्र अपनी शक्ति प्राप्त करता है और मन्त्र-चैतन्य स्फुरित होता है, और होम व पूजा आदि से मन्त्र का स्वामी तृप्त होता है.

७. होम—एक तो स्वयं अग्नि और उसमें यदि पवन की सहायता मिले तो वह क्या नहीं कर सकता. इस प्रकार मन्त्र-जाप के पश्चात् होम करने से यथेष्ट फल प्राप्त हो सकता है.

जाप के समय मंत्र के अन्त में कर्मानुसार पल्लवों का उपयोग होता है, क्योंकि मंत्रों का निवास ही पल्लव में होता है. जाप के समय मंत्र के अन्त में 'नमः' पल्लव और होम के समय 'स्वाहा' पल्लव लगाना चाहिए.

मूल मंत्र की जापसंख्या से दशवें भाग का जाप होम के समय में करना चाहिए अर्थात् एक हजार जाप को होम के साथ करें तब १०० संख्या का जाप करना चाहिए. सामान्य जाप पूरा होते ही होम करना चाहिए.

होमविधि—होमकुंड तीन प्रकार के होते है—१. चतुष्कोण, २. त्रिकोण, ३. गोल.

१. चतुष्कोण—शांति, पौष्टिक, स्तंभन आदि कर्म में.
२. त्रिकोण—मारण, आकर्षण कर्म में.

---

१. इस रिक्त जगह में जिन देवता की आराधना करनी हो उन देवता का नाम बोलना चाहिये. जैसे पद्मावती की आराधना करनी हो तो "भगवति पद्मावति देवि !"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. गोल—विद्वेषण और उच्चाटन कर्म में.

इन तीन प्रकार के कुंडों की गहराई और चौड़ाई एक हाथ प्रमाण होनी चाहिए. उनमें तीन पालियाँ बांधी जाती हैं. उनमें से पहली पाली का विस्तार और ऊंचाई पांच अंगुल, दूसरी की चार अंगुल और तीसरी की तीन अंगुल रखनी चाहिए.

होम करने वाले को सकलीकरण से अपने मन को शुद्ध कर, नयी धोती और चद्दर पहन कर पद्मासन से बैठना चाहिए. होम में मुख्यतः पलाश की लकड़ी होनी चाहिए. यदि पलाश न मिले तो दूधवाले वृक्ष अर्थात् पीपल आदि वृक्षों की लकड़ी (कीड़ा और जीव-जन्तु रहित) होम के लिये लानी चाहिये.

उसके साथ श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, शमी वृक्ष की लकड़ी भी होम के लिए लानी चाहिए.

पत्ते पीपल और पलाश के होने चाहिए.

होम में १ सेर दूध, १ सेर घी, और अष्टांग धूप आदि मिलाकर दो सेर वजन की होम सामग्री होनी चाहिए.

लकड़ी भी उस-उस कृत्यकारित्व के अनुसार ही अमुक नाप की रखनी चाहिए. जैसे—वध, विद्वेषण, उच्चाटन में आठ अंगुल लंबी; पौष्टिक कर्म में नव अंगुल लंबी; शांति, आकर्षण, वशीकरण, स्तंभन में बारह अंगुल लंबी लानी चाहिए.

शांति, पुष्टि आदि शुभ कार्यों में उत्तम द्रव्यसामग्री से प्रसन्नचित्त से होम करना चाहिए और मारण उच्चाटन आदि अशुभ कार्यों में अशुभ द्रव्यों से आक्रोशपूर्वक होम करना चाहिए.

जल, चंदन आदि अष्ट द्रव्यों से महामंत्र का जाप करते हुए अग्नि की पूजा करे. पीछे दूध, घी, गुड और साथ में एक लकड़ी को अपने हाथों से होमकुंड में रखे और पीछे अग्नि स्थापन करके सबसे पहले आहुति देते हुए श्लोक बोले.

पीछे लकड़ी को आहुति के द्रव्यों के साथ मिलाकर जाप्य मंत्र का उच्चारण करते हुए आहुति दे.

इस प्रकार होम की विधि शास्त्रों में बतायी गई है।

पांच कलशों की स्थापना करके होमविधि करनी चाहिए, जिससे संपूर्ण मंत्र विधि से मंत्र भली प्रकार साध्य हो सके.

अब मंत्र की जपसाधना में दिशा, काल, मुद्रा, पल्लव आदि प्रकार और मंत्र के कृत्यकारित्व के प्रकार संक्षेप में इस प्रकार हैं—[१] शांति, [२] पौष्टिक, [३] वशीकरण, [४] आकर्षण, [५] स्तंभन, [६] मारण, [७] विद्वेषण और उच्चाटन.

१. **शांति कर्म**—पश्चिम दिशा, अर्धरात्रि का समय, ज्ञानमुद्रा, पद्मासन, 'नमः' पल्लव, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, पूरकयोग, स्फटिक मणि की माला, दाहिना हस्त, मध्यमा अंगुली और जलमंडल से करे.

२. **पौष्टिक कर्म**—नैर्ऋत दिशा, प्रातःकाल, ज्ञानमुद्रा, स्वस्तिक आसन, 'स्वधा' पल्लव, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, पूरक, योग, मोतियों की माला, मध्यमा अंगुली, दाहिना हस्त और जलमंडल से करे.

३. **वशीकरण**—उत्तरदिशा, प्रातःकाल, कमलमुद्रा, पद्मासन, 'वषट्' पल्लव, लालवस्त्र, लाल पुष्प, पूरक योग, प्रवालमणि की माला, बांया हस्त, अनामिका अंगुली और अग्निमंडल से करे.

४. **आकर्षण**—दक्षिण दिशा, प्रातःकाल, अंकुशमुद्रा, दंडासन, 'वौषट्' पल्लव, रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प, पूरकयोग, प्रवाल की माला, कनिष्ठिका अंगुली, बांया हस्त, बांया वायु और अग्निमण्डल से करें.

५. **स्तम्भन कर्म**—पूर्वदिशा, प्रातःकाल, शंखमुद्रा, वज्रासन 'ठः ठः' पल्लव, पीतवस्त्र, पीतपुष्प, कुंभक योग, स्वर्ण की माला, कनिष्ठिका अंगुली, दाहिना हाथ, दक्षिणवायु और पृथ्वीमंडल से करे.

६. **मारण कर्म**—ईशानदिशा, संध्याकाल, वज्रमुद्रा, भद्रासन, 'घे घे' पल्लव, काला वस्त्र, काले पुष्प, रेचक योग, पुत्र-जीव मणि की माला, तर्जनी अंगुली, दाहिना हाथ, और वायुमंडल से करें.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७ **विद्वेषण कर्म**—आग्नेयदिशा, मध्याह्नकाल, प्रवालमुद्रा, कुक्कुटासन 'हुं' पल्लव, धूम्रवस्त्र, धूम्रपुष्प, रेचकयोग, पुत्रजीव मणि की माला, तर्जनी अंगुली, दाहिना हाथ और वायु मंडल से करें.

८. **उच्चाटन कर्म**—वायव्यदिशा, तीसरा प्रहर, प्रवाल मुद्रा, कुक्कुटासन, 'फट्' पल्लव, धूम्रवस्त्र, धूम्रपुष्प, रेचक योग, काले मणिओं की माला, तर्जनी अंगुली, दाहिना हाथ और वायु मंडल से करे.

मंडल—चार प्रकार के यंत्र-मंडल इस प्रकार हैं—

१. **पृथ्वीमण्डल**—पीला, चतुष्कोण, पृथ्वीबीज 'ल' 'क्षि' चार कोनों में लिखें और बीच में मंत्र स्थापन करें.

२. **जलमंडल**—श्वेत, कलश समान गोल, जलबीज 'व' 'प' चार कोने में लिखें, और बीच में मंत्र स्थापन करना चाहिए.

३. **अग्निमण्डल**—लाल, त्रिकोण, उसके तीन कोनों में बाहर की ओर स्वस्तिक की आलेखना करें और अन्दर की ओर 'र' 'ओं' बीज लिखें. बीज में मंत्र स्थापन करें.

४. **वायुमण्डल**—काला, गोलाकार बनावें, वायुबीज 'य' 'स्वा' भीतर की ओर लिखें और बीच में मंत्र स्थापन करें.

प्रत्येक मंत्र के अन्त में 'नमः' पल्लव लगाने से मारण आदि उग्र स्वभावी मंत्र भी शांत स्वभाव वाले बन जाते हैं और 'फट्' पल्लव लगाने से क्रूर स्वभाव वाले बन जाते हैं.

दीपन आदि प्रकार—दीपन से शांति कर्म, पल्लव से वशीकरण, रोधन से बंधन, ग्रथन से आकर्षण, और विदर्भण से स्तंभन कार्य किये जाते हैं. ये छः प्रकार प्रत्येक मंत्र में प्रयुक्त हो सकते हैं. उनके सोदाहरण लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं—

१. मन्त्र के प्रारम्भ में नाम स्थापन करना वह **दीपन**
उदाहरण—देवदत्त ह्रीँ.

२. मंत्र के अन्त में नाम निर्देश करना वह **पल्लव.**
उदा०—ह्रीँ देवदत्त.

३. मध्य में नाम बताना वह **संपुट.**
उदा०—ह्रीँ देवदत्त ह्रीँ.

४. आदि और मध्य में उल्लेख करना वह **रोध.**
उदा०—दे ह्रीँ व ह्रीँ द ह्रीँ त्त ह्रीँ.

५. एक मंत्राक्षर, दूसरा नामाक्षर, तीसरा मंत्राक्षर—इस प्रकार संकलन करना **ग्रथन.**
उदा०—ह्रीँ दे ह्रीँ व ह्रीँ द ह्रीँ त्त ह्रीँ.

६. मंत्र के दो-दों अक्षरों के बीच में एकेक नामाक्षर उसके क्रम से रखना **विदर्भण.**
उदा०—ह्रीँ त्त ह्रीँ द ह्रीँ व ह्रीँ दे ह्रीँ.

यहां हमने ह्रीँ बीजाक्षर मंत्र द्वारा उदाहरण दिये हैं परन्तु दूसरे बीजाक्षरों से भी दीपन आदि प्रकार उसी प्रकार समझ लेना चाहिए.

इन सब हकीकतों से साधक को मंत्र की साधना में हताश नहीं होना चाहिए. बीज, भूमि, पवन, वातावरण आदि शुद्ध हों तो उसका फल भी शुद्ध ही मिलता है. मंत्र और उसकी साधना की शुद्धि के लिए इतनी कसौटी आवश्यक है. सावधानी और भावनाशुद्धि हो तो यह विधि सरल बन जाती है और सिद्धि प्राप्त करने में कठिनाई नहीं पड़ती.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org